विज्ञान के लिए आन्दोलन
एक नयी ज़मीन तोड़ने का वक्त

[छत्तीसगढ़ विज्ञान सभा के राज्य सम्मेलन के अवसर पर प्रस्तुत]
16 नवंबर, 2019

– सुभाष गाताडे-

पुस्तिक सीरीज़–99

प्रकाशक
इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी
फ्लैट नंबर-110, नम्बरदार हाउस,
62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067
टेलीफोन - 011-26177904 टेलीफैक्स - 011-26177904
ईमेल - prakashan.isd@gmail.com
वेबसाइट - isd.net.in

प्रकाशन वर्ष - 2022

(विशेष सूचना - प्रस्तुत पुस्तिका का कोई कॉपीराइट नहीं है। जनहित में उसका व्यापक प्रसार किया जा सकता है। आप इसकी सूचना हमें दे सकें तो हमें खुशी होगी।)

केवल सीमित वितरण के लिए

"The important thing is not to stop questioning. Curiosity has its own reason for existing."

–Albert Einstein

"A good world needs knowledge, kindness, and courage; it does not need a regretful hankering after the past or a fettering of the free intelligence by the words uttered long ago by ignorant men.'

–Bertrand Russell

एक कठिन वक्त में जबकि अपनी आंखें खुली रखना, तर्कशीलता के रास्ते पर डटे रहना, समाज में वैज्ञानिक चिन्तन की बातें कहने में संकोच न करना अपने आप में जोखिम भरा काम हो गया हो, विगत छह सालों में हमने इसी के चलते पांच बेशकीमती योद्धाओं को खोया हो और कई अन्यों के नाम सनातनियों, रूढ़िवादियों, अतिवादियों की हिट लिस्ट में शामिल रहने की बात भी उजागर हुई हो, उस वक्त इस सम्मेलन की अहमियत और बढ़ जाती है।

हम सभी इन योद्धाओं के नाम से वाक़िफ़ हैं, लेकिन फिर भी उनके नाम को दोहराना मौजूं होगा।

वर्ष 2013 में पुणे की सड़कों पर दाभोलकर को, वर्ष 2015 में कोल्हापुर में

कामरेड गोविन्द पानसरे को, उसी साल धारवाड़ में प्रोफेसर कलबुर्गी को, वर्ष 2016 में गौरी लंकेश को तो उसके कुछ माह बाद तमिलनाडु में फारूक को खोया है।

पहले के चार नामों से हम सभी वाक़िफ़ हैं, लेकिन फारूक हमीद का नाम अधिकतर लोग नहीं जानते हैं।

फारूक हमीद–पेशे से लोहे के कबाड़ के व्यापारी थे, मगर वह सूबे में पेरियार रामस्वामी नायकर के विचारों के वाहक एक संगठन द्रविडार विदुथलाई कझगम के कार्यकर्ता भी थे और समाज में तर्कशीलता का प्रचार करते थे। वह एक व्हाट्सएप ग्रुप का संचालन करते थे, तमिल में जिसका शीर्षक था 'खुदा नहीं है' जिसमें तमिलनाडु के अलग-अलग इलाकों में फैले 400 से अधिक लोग सम्बद्ध थे, जिनमें अधिकांश मुस्लिम थे, और अधिकतर युवा थे, जिसके जरिए वह तर्कशीलता की बातों को लोगों तक पहुंचाते थे। और यही उनकी मौत का सबब बना। विडम्बना यही थी कि उनके साथ उठने बैठने वाले दोस्तों ने ही उन्हें मार डाला। धर्म के चलते अंधे हुए अपने दोस्तों के हाथों ही वह मारे गए थे।—16 मार्च 2017 (https://thewire.in/120375/atheist-silenced-coimbatore)

इन हमलों को आप महज तार्किकता पर हमले के रूप में नहीं देख सकते–जो हालांकि वह रहे हैं; इन हमलों को आप धर्म की वैकल्पिक व्याख्या करने की कोशिश तक सीमित नहीं कर सकते–जो हालांकि वह हैं; दरअसल यह हमले इस बात पर हैं कि आप असहमत होने तथा उसे प्रगट करने का साहस करते हैं, विरोध में बोलने की हिम्मत करते हैं। हमलावर यही सन्देश देना चाह रहे हैं कि जिस नया इंडिया के आगमन की बात कुछ अर्से से की जा रही है, उसकी बुनियादी शर्त है कि सिजदा करो और सुकून पाओ। और इस हुक्म की बेअदबी होगी तो उसकी सज़ा मिलेगी।

एक तरह से यह हमले समूचे समाज को बन्ददिमागी के गर्त में ढकेले रखने के लिए हैं ताकि वह एक राष्ट्र, एक जन, एक संस्कृति का भारत गढ़ा जा रहा है,

उसके पालतू नागरिक बन कर रहें।

हमारे वक्त में मशहूर कवि राजेश जोशी ने कभी अपनी एक कविता में लिखा था, वह आज के वक्त के लिए बेहद मौजूं है :

जो इस पागलपन में शामिल नहीं होंगे, मारे जाएँगे।
कठघरे में खड़े कर दिये जाएँगे
जो विरोध में बोलेंगे
जो सच-सच बोलेंगे, मारे जाएँगे।
....
धर्म की ध्वजा उठाने जो नहीं जाएँगे जुलूस में
गोलियां भून डालेंगी उन्हें, काफिर करार दिये जाएँगे
सबसे बड़ा अपराध है इस समय निहत्थे और निरपराधी होना
जो अपराधी नहीं होंगे, मारे जाएँगे।

और देखिए यह पहली दफा नहीं हो रहा है, हम 19 वीं सदी की दो अज़ीम शख्सियतों को देख सकते हैं, एक के नाम से आप सभी परिचित हैं, मगर दूसरे नाम से मुमकिन है परिचित न हों। ज्योतिबा फुले (1827-90)और गोपाल गणेश आगरकर (1856-1895), दोनों समाज सुधारक थे और अपने वक्त में इनकी सक्रियताओं से रूढ़िवादी ताकतों में काफी बेचैनी रही। और उनके खिलाफ वह सक्रिय रहे, यहां तक कि फुले की हत्या करने के लिए किसी को सुपारी भी दी गयी थी, गनीमत थी कि हमलावर द्वारा अपने काम को अंजाम देने के पहले फुले अचानक नींद से जग गए थे और उस भाड़े के हत्यारे से उन्होंने पूछा था कि आख़िर तुम मुझे क्यों मारना चाहते हो। यह हक़ीकत है कि वह हमलावर बाद में उनका सच्चा अनुयायी बना था।

लोकमान्य तिलक के कभी सहयोगी रहे गोपाल गणेश आगरकर से रूढ़िवादी इस कदर खफा थे कि उन्होंने जीते जी उनकी अर्थी निकाली थी, और जिसे वह उनके अपने घर के सामने से ले गए थे। लेकिन ऐसे विरोधों से न वह झुके न उन्होंने अपने विरोधियों से समझौता किया। गोपाल गणेश आगरकर ने वैचारिक संघर्ष की हिमायत करते हुए एक जगह लिखा था:

> ‘दोस्तों, वैचारिक संघर्ष से आप इतना क्यों डरते हैं ? गलत व्यवहार का खात्मा, अच्छे व्यवहार का प्रसार, ज्ञानवृद्धि, सत्य की खोज और संवेदना का विचार आदि बातें जो मनुष्य के जीवन में सुख की बढ़ोत्तरी करने वाली हैं वह वैचारिक संघर्ष के बिना मुमकिन नहीं होती। दरअसल इस मुल्क में जितना ऐसा संघर्ष होना चाहिए था, वह न होने के चलते और हमारी जनता के निरंतर लीक पर चलते रहने से यह भारत इतनी सदियों से अनेक किस्म की आपदाओं का शिकार हुआ है।’
> (https://www.loksatta.com/vishesh-news/gopal-ganesh-agarkar-3-1912862)

और इतिहास के पन्नों को पलटते जाइए आप को तमाम ऐसी मिसालें मिलेंगी, किसी को देश निकाला दिया, किसी की किताबें जला दी तो किसी को जिन्दा जला दिया, मगर हर दौर में, हर पीढ़ी में ब्रूनो के वारिस मिलते जाते हैं। जिन हजारों-हजारों लोगों ने इकट्ठा होकर ब्रूनो को जिन्दा जलाने का जश्न मनाया, वह इतिहास के पन्नों में पता नहीं कहाँ दफ़न हो गए, लेकिन अपनी शहादत के बाद ब्रूनो का नाम आज भी हर विद्रोही मुंह पर नारे के शक्ल में उभर रहा है।

ब्रूनो के 21 वीं सदी के इन सभी सच्चे वारिसों को अपनी श्रद्धांजलि देते हुए, खिराजे अकीदत पेश करते हुए चन्द बातें मैं साझा करना चाहूंगा।

मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य ऐसा प्राणी है जिसे सभी चीज़ों की आदत हो जाती है।

प्राचीन रोमन साम्राज्य के गुलामों के बारे में यह बात चर्चित है कि वह रफ़्ता-रफ़्ता ऐसी स्थिति में पहुंच जाते थे कि अपनी बेड़ियों को चमकाने में लग जाते थे। अंधेरे के बारे में भी यही कहा जा सकता है कि लोग अंधेरे के आदी हो जाते हैं। काम भर की चीज़ें उसी अंधेरे में पहचान कर अपना काम चलाते रहते हैं, लेकिन यही बात भूल जाते हैं कि वह ‘अंधेरे समयों में रह रहे हैं।’

पिछले दिनों एक विद्वान मित्र ने सभा की शुरुआत अंधेरे को एक रूपक के तौर पर प्रस्तुत करते हुए इसी अन्दाज़ में की।

यह अंधेरा–हमारी युवा पीढ़ी के सामने खड़े अंधकारमय भविष्य का हो सकता है, जहां ख़बर आ रही है कि विगत छह सालों में नब्बे लाख नौकरियां कम हुईं; यह अंधेरा–स्त्री विरोधी हिंसा के अधिकाधिक आम होते जाने का हो सकता है, जहां नये-नये बेहतर कानून भी बेअसर साबित होते दिखते हैं; यह अंधेरा उस 'स्वास्थ्य के आपातकाल'–हेल्थ इमरजेंसी–की मौजूदा स्थिति का माना जा सकता है, जो अब हम सभी के लिए नार्मल हो गया है, जब हमने तय किया है कि हम मास्क पहन कर निकला करेंगे और फिर यह संकट काफूर हो जाएगा; यह अंधेरा–राक्षसी ताकतों के सामने विकल्पहीनता की स्थिति पैदा होते जाने का हो सकता है, जब वह डंके की चोट पर कह रहे हैं कि अब हम ही सभी के किस्मत के नियंता हैं और ताउम्र रहेंगे।

फिलवक्त हम इस व्यापक अंधेरे की बात नहीं कर रहे हैं। ऐसा नहीं कि इस पर बात करना जरूरी नहीं है बल्कि ज्यादा जरूरी है, मगर अभी हमारा फोकस थोड़ा सीमित है, समाज में बढ़ते विज्ञान विरोध से है, जब अतार्किकता, अंधश्रद्धा की तूती बोलती दिख रही है। आलम यहां तक आ पहुंचा है कि विज्ञान की उपलब्धियों को सिरे से नकारा जा रहा है।

इस दौर ए तरक्की के अंदाज़ निराले हैं।
ज़हनों में अंधेरे हैं, सड़कों पे उजाले हैं॥

विज्ञान विरोध के बढ़ते अंधेरे की जो बात हम कर रहे थे, क्या वह उचित लगती है ?

शायर की यह बात क्या मौजूं लगती है कि हमारे दिमागों का अंधेरा फैलता ही जा रहा है।

आम लोगों की तरफ से एक किस्म की प्रतिक्रिया यह हो सकती है कि आप कहें

कि आप चंद नेताओं की बातों तक अपने आप को सीमित क्यों कर रहे हैं, पूरे समाज को देखिये क्या आप को बदलाव नहीं नज़र आ रहा है।

कहां फैल रहा है अंधेरा, चारों तरफ तो उजाला ही उजाला है। देखते नहीं हैं कि हर दूसरे हाथ में स्मार्ट फोन है, छोटा-छोटा बच्चा गूगल के बारे में जानता है, वह बुजुर्गों की तुलना में नयी-नयी टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल करने में माहिर है, चीज़ें यहां तक विकसित हुई हैं कि आपको लग सकता है कि समूची दुनिया आप की मुट्ठी में है। ऑनलाइन ऑर्डर करके अपने निजी जीवन को खुशनुमा बना सकते हैं। बीत गए वे दिन जब लैण्डलाईन फोन का ही जलवा था और अब यह आलम है कि एक साथ वीडियो कॉल के जरिए दुनिया के कोने-कोने में बैठे मित्रों-रिश्तेदारों से एक साथ बात हो सकती है।

बात सही है, विज्ञान को अगर हम महज इस्तेमाल तक, तकनीक तक ही न्यूनीकृत कर दें तो आप की बात सही है, लेकिन विज्ञान का मतलब तकनीक नहीं होता, उसका अर्थ होता है चीज़ों के कारण को जानना।

निश्चित ही विज्ञान जगत में हो रही नयी-नयी तरक्की से उपजी टेक्नोलॉजी से समाज का परिचय बढ़ा है, मगर फिर भी इस बात के प्रमाण कत्तई नहीं मिलते जो दिखायें कि किस तरह विज्ञान के 'जानने तथा समझने' के पहलू से समाज वाक़िफ़ हो चला है। स्मार्टफोन को इस्तेमाल करने वाला बच्चा या बड़ा भी क्या उसमें अन्तर्निहित टेक्नोलॉजी तथा उसके पीछे के विज्ञान को जानता है। हम समझते हैं कि उसके लिए वह स्मार्ट फोन या अन्य ऐसा कोई भी गैजेट/उपकरण अपनी पहले की पीढ़ी में अधिक चर्चित काला जादू से अधिक कुछ भी नहीं है। इसलिए तो वह उसके स्मार्टफोन पर आसानी से उपलब्ध सोशल मीडिया से–व्हाट्सएप/फेसबुक आदि से–टीवी से जो निहायत अनर्गल बातें परोसी जा रही हैं, फिर वह चाहे अंधश्रद्धा को बढ़ावा देने वाली हों या समुदाय विशेष के खिलाफ नफरत से भरी हो, उन्हें आसानी से ग्रहण कर रहा है और लोगों तक साझा करके एक 'देशभक्तिपूर्ण' कर्तव्य को अंजाम दे रहा है।

और इस मामले में चूंकि ऐसी चीज़ें 'बिकती' हैं इसलिए उनकी मार्केटिंग भी जोर

शोर से होती रहती है।

टेलीविजन चैनलों को ही देखें वह मनोरंजन के नाम पर कार्यक्रमों में ज्योतिष से जुड़े, या चमत्कारों से जुड़े कार्यक्रमों को धडल्ले से परोसते हैं। पिछले दिनों कहीं ख़बर छपी थी कि आधा वक्त तक टेलीविजन चैनल ज्योतिष से सम्बधित कार्यक्रमों को प्रदर्शित कर रहे थे जो लोगों में विज्ञानविरोधी धारणाओं को मजबूती देते हैं और उन्हें गुमराह करते हैं, जबकि अगर विज्ञान के बुनियादी सिद्धांतों के आधार पर जिन सैटेलाइटों का निर्माण किया गया है, वह अगर न रहते तो इन तमाम टेलीविजन चैनलों का कारोबार बन्द हो जाता।

मुझे याद है किसी दिन अचानक सुबह जहां दूध लेने गया वहां दुकानदार का टीवी चल रहा था तो किसी चैनल पर उन पत्थरों का प्रचार आ रहा था, जिनसे बनी अंगूठी या हार आपके पहनने पर आपकी तमाम आपदाएं दूर होने का वायदा किया जा रहा था, रात दस बजे के बाद के समाचारों के बाद एक प्राइवेट टीवी चैनल ने बाकायदा एक घंटे का प्रोग्राम पेश किया था 'स्वर्ग का रास्ता' पर। और यह कार्यक्रम मनोरंजन चैनल पर नहीं था बल्कि समाचार चैनल पर था।

अगर देखने वाले मना करते तो चैनल मालिक की क्या हिम्मत होती कि वह दिखाता, लेकिन चूंकि लोग भी एंजाय करते हैं, लिहाजा उन्हें वही चीज़ें पेश की जाती हैं।

विज्ञान को जिस तरह नकारा जा रहा है, उसे मद्देनज़र रखते हुए मुझे आज से 130 साल पहले गुजरे राबर्ट ग्रीन इंगरसोल (1833-1899)–जो तर्कशास्त्रियों की पंक्तियों में अगली कतारों में थे और जिन्होंने अंधश्रद्धा के खिलाफ ताउम्र अपनी जंग जारी रखी–द्वारा विज्ञान की अहमियत बताते हुए कही गयी एक दिलचस्प बात याद आ गयी :

> "हम जानते हैं कि जो कुछ हमारे पास मूल्यवान है वह सब हमें विज्ञान ने प्रदान किया है। विज्ञान ही एकमात्र सभ्य बनाने वाला है। इसने गुलामों को मुक्त कराया, नंगों को कपड़े पहनाए, भूखों को भोजन दिया, आयु में बढ़ोत्तरी की,

> हमें घर-परिवार-चूल्हा दिया, चित्र तथा किताबें, जलयान, रेलें, टेलीग्राफ तथा तार तथा इंजन जो असंख्य पहियों को बिना थके घुमाते हैं, और इसने भूत पिशाचों शैतानों, पंखों वाले दैत्यों का जो असभ्य जंगली लोगों के दिमाग पर छाए रहते थे, नामोनिशान मिटा दिया।

इसी लम्बे आलेख में उन्होंने यह भी लिखा था :

> हम किसी स्वामी की रचना नहीं करते तथा खुशी-खुशी कृतज्ञतापूर्वक उसकी बेड़ियां नहीं पहनते। हम स्वयं को गुलामी में नहीं झोंकते। हमें न तो नेता चाहिए – और न ही अनुयायी। हमारी इच्छा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रति, अपने आदर्शों के प्रति सच्चा एवं सही रहे, वायदों के लालच में न आए, धमकियों की परवाह न करे। हम धरती पर या आकाश में अत्याचारी की उपस्थिति नहीं चाहते।

कोई यह पूछ सकता है कि विज्ञान की इतनी सारी बातें हो रही हैं, आख़िर विज्ञान को, वैज्ञानिक नज़रिये को किस तरह समझा जा सकता है? हम इस सम्बन्ध में अंधश्रद्धा के खिलाफ संघर्ष में शहीद हुए डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर के एक लम्बे साक्षात्कार पर गौर कर सकते हैं, (8 अप्रैल 2013) जिसमें उन्होंने तमाम पाठकों के सवालों के जवाब दिए। पहला प्रश्न ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर केन्द्रित था, जिसमें उन्हें पूछा गया कि 'आख़िर इस शब्द के क्या मायने है?'

दाभोलकर का जवाब था :

> वैज्ञानिक दृष्टिकोण के मायने दुनिया की तरफ एक अलग नज़र से देखना। कोपर्निकस जैसे महान वैज्ञानिक के पहले लोग समझते थे कि सूर्य पृथ्वी के इर्दगिर्द घूमता है, जबकि उसने अपने गणितीय ज्ञान के आधार पर बताया कि दरअसल पृथ्वी सूर्य के इर्दगिर्द घूमती है। कोपर्निकस की इस खोज के चलते दुनिया का केन्द्रबिन्दु बदल गया। इसके बाद विज्ञान के क्षेत्र में अलग-अलग खोजें हुई, आविष्कार हुए। बीती

सदी में यह नज़रिया इतना अहम बना कि भारत के संविधान में नागरिकों के कर्तव्य में भी इसे शामिल किया गया।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण को लेकर चार बातें कहीं जा सकती हैं :

1. 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अर्थ कार्यकारण सम्बन्ध। हर कार्य के पीछे कोई कारण होता है, उसके पीछे भगवान, नसीब, ऐसी कोई भी बात नहीं होती

2. इस कारण को हम अपनी बुद्धि से समझ सकते हैं

3. दुनिया के हर कार्यों के कारण समझना संभव नहीं होता। मिसाल के तौर पर, कैन्सर क्यों होता है, इसकी वजह हमें आज मालूम नहीं। वैज्ञानिक नज़रिया इस मामले में हमेशा ही नम्र होता है, जो कहता है कि हम सत्य की अपनी खोज जारी रखेंगे

4. वैज्ञानिक नज़रिया यह वास्तविक ज्ञान प्राप्ति का सबसे गारंटीशुदा रास्ता है और इसलिए वह मानवीय जीवन का सबसे अहम पहलू है।

पिछले दिनों नोबेल पुरस्कारों पर फेसबुक पर किसी की टिप्पणी पढ़ने को मिली थी :

Facebook Page / B.M.Prasad
लिथियम बैटरी के आविष्कार पर नोबेल पुरस्कार

इन तीनों को ईश्वर पर भरोसा नही। यानी नास्तिक।

कभी कोई धर्म ग्रंथ नही पढ़ा सिर्फ विज्ञान की किताबें पढ़ी।

तीनों ने पूरा जीवन विज्ञान के नए शोध में वैज्ञानिक अध्ययन

में खुद को समर्पित कर दिया।

तीनों वैज्ञानिकों ने मिलकर लिथियम आयन बैटरी का शोध किया। लिथियम आयन बैटरी को एक क्रांतिकारी शोध माना जाता है, जिसका उपयोग आजकल मोबाइल और लैपटॉप से लेकर इलेक्ट्रिक गाड़ियों तक में धड़ल्ले से हो रहा है।

लेकिन इसका प्रथम बार उपयोग टॉर्च में किया गया था। ग्रामीण इलाकों में रहने वालों को याद होगा जिस टॉर्च को आप बिजली से चार्ज करते थे उसकी बैटरी को इन तीन महान विभूतियों ने बनाया है।

धर्म, ग्रंथ और देवताओं का तो पता नही लेकिन मनुष्य के जीवन में क्रांति लाने का श्रेय सिर्फ वैज्ञानिकों को जाता है।

प्रिंटिंग प्रेस, बिजली, रेल, हवाई जहाज, अंतरिक्ष यान, रेडियो, कार, टीवी, फ्रीज़, मोबाइल, सैटेलाइट, बॉल पेन, किताब, दवा, इंजेक्शन, मशीन, ऑपरेशन, कैमरा, सिनेमा और बहुत सी नए खोज-शोध जिससे दुनिया अंजान थी।

जान गुडइनफ, स्टैनली विटिंघम और अकीरा योशिनो को बहुत-बहुत बधाई।

हमारे समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण ना होता तो हम आप गुफा में बैठकर कच्चा मांस खा रहे होते और वैज्ञानिक शोध नहीं हुए होते तो हम आप आज भी अँधेरे में जी रहे होते।

"The greatest enemy of knowledge is not ignorance, but the illusion of knowledge."
–Stephen Hawkings

विज्ञानविरोधी बातें कहना, अतार्किकता को बढ़ावा देना, सभी चीज़ों का हल अतीत की धर्मशास्त्र की किताबों में होने का दावा करना अब सम्मानित हो गया है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे लोगों में गोया कोई होड़ मची है, प्रतियोगिता चल रही है अधिकाधिक बेतुकी बातें कहने की। कोई महाभारत जैसे पौराणिक महाकाव्य के युद्ध प्रसंगों का हवाला देते हुए इसमें इंटरनेट होने की बात कर रहा है, कोई डार्विन के सिद्धांत को यह कह कर प्रश्नांकित कर रहा है कि बन्दर से आदमी बनते हमने तो देखा नहीं तो कैसे मानें, तो कोई प्राचीन वक्त में विमान उड़ाने की टेक्नोलॉजी हमारे पास होने की बात कर रहा है तो कोई कैबिनेट पद पर बैठा शख्स झाड फूंक करने वालों को सम्मानित करने के समारोह की अध्यक्षता कर रहा है। तो कोई किसी सूबे में पूजा पाठ से बारिश की उम्मीद लगाए बैठा है, सूबे में हजारों मंदिरों में यज्ञों के आयोजन के लिए सरकारी खजाना लुटाता दिख रहा है।

वैसे पिछले दिनों यूपी कैबिनेट में पदासीन एक जनाब ने जो फरमाया वह तो गजब था; आप ने कहा कि राष्ट्रीय राजधानी में प्रदूषण का स्तर बढ़ रहा है कोई बात नहीं, दिल्लीवासी गैस चैम्बर में रहने को अभिशप्त हो रहे हैं कोई बात नहीं, किसानों को जिम्मेदार ठहराने के बजाय लोगों को चाहिए कि वह इंद्र भगवान के खुश करने के लिए यज्ञ का आयोजन करें, जैसा कि पारम्पारिक तौर पर किया जाता था और वह चीजों को ठीक कर देंगे।–(https://indianexpress.com/article/india/delhi-air-quality-pollution-smog-sunil-bharala-stubble-burning-natural-pray-to-lord-indra-6100810/)

देखिए मैं किसी की भावना को, आस्था को आहत नहीं करना चाहता; मैं खुद नास्तिक हूं, मगर आप के धार्मिक अधिकारों की हिफाजत करने के लिए तैयार हूं – अगर उन्हें कही दमित किया जा रहा है – लेकिन अगर यह भगवान को भी छोटा करना हो गया न कि गंदगी आप करें और जिसे आप परमपिता समझते हैं, उन्हें आवाज़ दें; यह तो उसी तरह हो गया न कि छोटा बच्चा गंदगी फैलाए और अपनी मां को आवाज़ दे। अगर आप ईश्वर के सच्चे भक्त हैं, अगर आप मानते हैं कि खुदा सबकी रखवाली करता है, तो भई आप हवा, पानी सभी को अपनी

हरकतों से प्रदूषित कर देंगे और फिर अपने सेवक की तरह उन्हें बुलावा भेजेंगे।

कहे अनकहे यह उनकी तौहीन करना हो गया। अब यह आप पर है कि आप यज्ञ करें या न करें या कोई जुगत भिड़ायें की हवा शुद्ध रहे।

विज्ञान विरोध की बात, वैज्ञानिक नज़रिये से तौबा करने की बात महज सियासतदानों तक सीमित नहीं है।

विज्ञान कांग्रेसों का माहौल भी कई बार मिथकीय माहौल में रंगता दिख रहा है।

हालत यहां तक आ पहुंची है भारतीय मूल के अमेरिकी वैज्ञानिक नोबेल पुरस्कार विजेता वेंकटरमण रामाकृष्णन ने कहा कि 'वह एक सर्कस बन गया है, जहां विज्ञान की चर्चा नहीं होती।'–(https://www.dnaindia.com/india/report-nobel-laureate-v-ramakrishnan-callsindian-science- congress-a-circus-2162787) याद रहे धर्म और विज्ञान के आपसी घालमेल की वह लम्बे समय से आलोचना करते रहे हैं।

अभी आख़िरी विज्ञान कांग्रेस को देखें जिसका जालंधर में आयोजन हुआ था (जनवरी 2019) जिसमें दो वैज्ञानिकों के वक्तव्यों ने हंगामा मचा दिया था। आंध्र विश्वविद्यालय के कुलपति जी. नागेश्वर राव ने कहा कि प्राचीन भारत में टेस्ट ट्यूब बेबी थे, स्टेम सेल रिसर्च भी होता था, जबकि कन्नन कृष्णन ने बिना किसी सबूत के यह दावा किया कि अल्बर्ट आइंस्टीन, न्यूटन और स्टीफन हॉकिंग के सिद्धांत गलत हैं।

निश्चित ही न नागेश्वर राव और न ही कन्नन कृष्णन आज के समय में अपवाद कहे जा सकते हैं।

बिना बुनियाद ऐसी बातें स्थापित मंचों से कही जा रही हैं जिन्हें सुनने मात्र से ही दुनियाभर में भारत की तथा वहां जारी विज्ञान अध्ययन एवं अनुसंधान की हास्यास्पद छवि बनती दिख रही है। हकीकत यही है कि जब आस्था आप के

चिन्तन पर हावी होने लगती है तो आप आसानी से संदेह को त्याग कर–जिसे ज्ञान की पहली सीढी कहा गया है–धर्मग्रंथों की वरीयता के सामने सिजदा करते जाते हैं, आप किसी भी बात पर यकीन करने लगते हैं।

इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गनाइजेशन के पूर्व प्रमुख माधवन नायर ने कुछ समय पहले एक सिद्धांत पेश किया था कि वेदों के कुछ श्लोकों मे चंद्रमा पर पानी होने की बात स्पष्ट होती है... या किस तरह केन्द्रीय विज्ञान और टेक्नोलॉजी मंत्री हर्ष वर्द्धन ने भारतीय विज्ञान कांग्रेस के बीते अधिवेशन में यह कह कर सभी को चौंका दिया कि उसके कुछ वक्त पहले गुजरे महान कॉस्मोलॉजिस्ट प्रोफेसर स्टीफन हॉकिंग ने कहा था कि वेदों में आइंस्टीन से बेहतर समीकरण उपलब्ध हैं, बाद में जब उन्हें अपनी ज्ञान के स्त्रोत के बारे में पूछा गया तो उन्होंने इस सवाल को ही टाल दिया था।

> A founding trustee of the Stephen Hawking Foundation has said he is certain that the late scientist "did not support the claims" made by Union minister Harsh Vard¬han Perry added: "It is quite possible that he made a reference to the Vedas playfully when discussing creation myths—such as found in the Bible or the Vedas — when comparing them to the now conventional scientific picture of the big bang accompanied by a period of inflation, or perhaps when discussing the noboundary proposal for the creation of the universe."
>
> –(https://www.telegraphindia.com/india/trustee-s-rebuttal/cid/1339035)

मशहूर विज्ञान लेखक साइमन सिंह, जिन्होंने खुद उसी संस्थान से अध्ययन किया

है जहां प्रोफेसर स्टीफन हॉकिंग कार्यरत थे, इस बात पर अफसोस प्रगट किया कि विज्ञान मंत्री को विज्ञान की इतनी कम जानकारी है।

> The science writer, Simon Singh, who studied physics at Imperial College London and did his PhD in particle physics from Cambridge, expressed impatience with Vardhan.
>
> He said: "It's sad that a science minister tries to exploit the passing of a genius to falsely promote his own religious agenda. It's sad that a science minister seems to have such a feeble grasp of science. And it's sad that, instead of writing some words to celebrate Professor Hawking's life, I have to waste time responding to nonsense comments from a nonsense science minister."
>
> Several senior scientists in India on Saturday expressed disappointment at what they view as Vardhan's decision to pick up an unsubstantiated claim from a sevenyearold prank on Facebook and try to propagate it through his speech.

लगभग तीन साल पहले (जनवरी 2017) में तिरूपति में आयोजित 'भारत विज्ञान कांग्रेस' के अधिवेशन को लेकर जाने-माने वैज्ञानिक और सेन्टर फॉर सेल्युलर एण्ड मोलेक्युलर बायोलॉजी के पूर्व निदेशक पी.एम.भार्गव (जिनका निधन हुआ) द्वारा इस सम्बन्ध में जारी बयान काफी चर्चित भी हुआ था जब

उन्होंने विज्ञान कांग्रेस में विज्ञान एवं आध्यात्मिकता जैसे मसलों पर सत्र आयोजित करने के लिए केन्द्र सरकार तथा विज्ञान कांग्रेस के आयोजकों की तीखी भर्त्सना की थी। उनका कहना था कि 'मैं अभी तक चालीस से अधिक बार भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशनों को 1948 के बाद से उपस्थित रहा हूं मगर विज्ञान को अंधश्रद्धा के समकक्ष रखना एक तरह से भारतीय विज्ञान के दिवालियेपन का सबूत है।' उन्होंने इस बात को भी रेखांकित किया कि यह महज सरकार का दोष नहीं है मगर वैज्ञानिक समुदाय का भी है जिन्हें ऐसे सम्मेलन में शामिल होने से इन्कार करना चाहिए था। (http://www.thehindu.com/news/national/telangana/Bhargava-blasts-ISC-for-equating-science-with-spirituality/article16981938.ece)

छद्म विज्ञान को विज्ञान के आवरण में पेश किए जाने का असर वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा मिलने वाली राशि की कटौती में हुआ है। विज्ञान की नयी शाखा के तौर पर काउपैथी का आगमन या गोविज्ञान का इस क्लब में नया प्रवेश हुआ है। राष्ट्रीय स्तर के तमाम विज्ञान विभागों और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं ने इस सम्बन्ध में एक नए साझे कदम का ऐलान किया है। डिपार्टमेण्ट ऑफ साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी द्वारा 'पंचगव्य' की वैज्ञानिक पुष्टि और इस सिलसिले में अनुसंधान को आगे बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय संचालन समिति का गठन किया गया है। इस 19 सदस्यीय कमेटी का कार्यकाल तीन साल का होगा। (https://thewire.in/136259/panchgavya-svarop-iit-csir-cow-urine) वहीं दूसरी तरफ आलम यह है कि आई.आई.टी., एन.आई.टी. और आई.आई.एस.ई.आर. जैसे प्रमुख विज्ञान-टेक्नोलॉजी संस्थानों की वित्तीय सहायता को घटाया जा रहा है, वैज्ञानिक शोध में सहायता के लिए विश्वविद्यालयों को फंड की कमी झेलनी पड़ रही है, डिपार्टमेण्ट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, सेन्टर फॉर साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च जैसे संस्थानों के पास अपने कर्मचारियों, वैज्ञानिकों की तनख्वाह देने के लिए पैसे के लाले पड़ रहे हैं, उन सभी को कहा जा रहा है कि वह अपने आविष्कार और अन्य स्त्रोतों से अपने वेतन का एक हिस्सा जुटाया करें। एक अहम फर्क यह भी आया है कि मौजूदा हुकूमत का जोर टेक्नोलॉजी के विकास पर है, उसके लिए संसाधन जरूर उपलब्ध किए जा रहे हैं मगर बुनियादी विज्ञान पर खर्चा घटाया जा रहा है।

जाहिर है कि विज्ञान के 'समझने-जानने' के पहलू के बजाय उससे उपजी तकनीक से 'काम करने' पर जो जोर रहता आया है, उसी का यह प्रतिबिम्बन है। यह कहीं नहीं दिखता कि समाज वाकई वैज्ञानिक चिन्तन को आत्मसात किए हुए है, वैज्ञानिक मूल्य समाज में स्वीकृत हो गए हैं। प्रयोगशाला में भौतिकी के प्रयोग करने वाला रिसर्चर या कक्षा में विद्यार्थियों को बेहद रूचि के साथ विज्ञान सिखाने वाला शिक्षक उतने ही समर्पित भाव से कक्षा के बाहर जाकर अपने परिवार में तमाम अवैज्ञानिक बातों को ओढ़े रखने में संकोच नहीं करता है। अब अगर चंद्रयान भेजे जाने के पहले इसरो के कर्णधार चंद्रयान की एक छोटी अनुकृति बना कर तिरूपति मंदिर चढ़ाने पहुंच जाते हों, तो आम लोगों की क्या बिसात?

यह नज़र नहीं आता कि मनुष्य अंधश्रद्धा के चंगुल से बाहर निकला है, वह अपना भविष्य बेहतर बनाने के नाम पर तरह-तरह के फ्रॉड लोगों–जिन्हें बाबा कहा जाता है–के चक्कर में नहीं पड़ रहा है।

अगर ऐसा होता तो क्या यह मुमकिन था कि ऐसे बाबाओं, साध्वियों की ऐसी बाढ़ आती जिनके लिए लोग तमाम चीज़े न्यौछावर करने को हमेशा तत्पर रहते।

पिछले दिनों दक्षिण में अधिक लोकप्रिय एक स्वयंभू भगवान–जिनके अनुयायी विदेश में भी फैले हैं – के तमाम आश्रमों पर इनकम टैक्स की तरफ से छापेमारी की गयी और कई सौ करोड़ रूपयों की अघोषित आमदनी का पता चला। इस 'स्वयंभू भगवान' के बारे में पता चला कि 70 के दशक में कहीं मामूली क्लर्क था और आज अरबों रूपयों की सम्पत्ति का मालिक है, उसके आध्यात्मिक समूह ने रियल इस्टेट और निर्माण जैसे क्षेत्रों में–भारत और बाहर–विस्तार किया है और अब इस कारोबार को मुख्यतः उसका बेटा सम्भालता है। इन स्वयंभू गॉडमैन पर ज़मीनों पर कब्जा करने या नशीली दवाओं के तथा यौन अत्याचार के भी आरोप लगे हैं।

हम जानते हैं कि यह 'स्वयंभू भगवान' अकेले नहीं है। आज की तारीख में कई बड़े-बड़े ऐसे ही बाबा–जिनके समागमों में हजारों, लाखों लोग इकट्ठा होते रहते थे, जेल की सलाखों के पीछे हैं। किसी पर आरोप है कि उसने युवतियों से

अत्याचार किया तो किसी पर आरोप है कि उन्हें उसने नपुंसक बनाया तो किसी पर लोगों की हत्या के आरोप लगे हैं।

विडम्बना है कि इससे आध्यात्मिक सुपरमार्केट में कोई मंदी नहीं आयी है। नये-नये बाबा और उनके नये-नये अनुयायी आते ही जा रहे हैं। दस साल पहले एक अग्रणी पत्रिका ने एक सर्वेक्षण करके बताया था कि कितने लाख लोग इस अलग किस्म के सुपरमार्केट में सेवा प्रदाता बने हैं, कोई 'तुरंत निर्वाण' की बात करता है तो कोई 'जीने का सलीका' सिखाने की बात करता है तो कोई किसी अन्य मार्केटिंग स्ट्रेटजी के साथ हाजिर होता है।

ऐसा नहीं कि यह सिलसिला नया है बल्कि पहले से चल रहा है, अब हुआ यह है कि इन संतों ने या फ्रॉड बाबाओं ने भी विज्ञान की भाषा का इस्तेमाल शुरू किया है।

यह बाबा लोग हमेशा चमत्कार दिखाने वाले या आप के दुखहरण करने की बात करने वाले ही नहीं होते।

उनमें एक ऐसी जमात भी खड़ी हो रही है, जो 'जीने का सलीका' सिखाने की बात करते हैं या जो अपने समूचे विमर्श को विज्ञान की जुबां में इस तरह लपेटते हैं कि भले-भले चकरा जाएं।

विज्ञान के खिलाफ यह गोलबन्दी कब तक?

एक तरफ जहां भारत के वैज्ञानिक एवं उनकी सक्रियताएं देश-विदेश में सराही जा रही हैं: फिर वह चाहे गुरूत्वाकर्षणी तरंगों और हिग्स बोसॉन की खोज में हाथ बँटाने का मामला हो या मंगलयान के माध्यम से इंटरप्लानेटरी मिशन में और स्वदेशी उपग्रह प्रेक्षण क्षमता को विकसित करना हो; अक्सर हम अपनी पीठ को इसलिए थपथपाते रहते हैं कि भारत वैज्ञानिक-टेक्नोलॉजिकल मामलों में संकेंद्रित मानवशक्ति में दुनिया में तीसरे नम्बर पर हैं; मगर दूसरी तरफ हमें अवैज्ञानिक मान्यताओं और धार्मिक विचारों की बढ़ती लहरों का सामना करना पड़ रहा है।

आलम यहां तक पहुंचा है कि संसद के पटल पर निहायत अनर्गल, अवैज्ञानिक बातें कहीं जा रही हैं और यकीन करना मुश्किल हो रहा है कि उसी संसद की पटल पर वर्ष 1958 में विज्ञान नीति का प्रस्ताव तत्कालीन प्रधानमंत्री ने पूरा पढ़ा था (13 मार्च 1958) और एक मई 1958 को उस पर हुई बहस में किसी सांसद ने यह नहीं कहा कि भारत धर्म और आस्था का देश है। सांसदों ने कुंभ मेले, धार्मिक यात्राओं पर कटाक्ष किए थे, जिनका इस्तेमाल उनके मुताबिक 'अंधविश्वास फैलाने के लिए किया जाता है।' नवस्वाधीन भारत को विज्ञान एवं तर्कशीलता के रास्ते पर आगे ले जाने के प्रति बहुमत की पूरी सहमति थी।

याद रहे भारत की संविधान की धारा 51 ए मानवीयता एवं वैज्ञानिक चिन्तन को बढ़ावा देने में सरकार के प्रतिबद्ध रहने की बात करती है। वह अनुच्छेद राज्य पर वैज्ञानिक एवं तार्किक सोच को बढ़ावा देने की जिम्मेदारी डालता है। याद करें, एस.आर.बोम्मई मामले में उच्चतम न्यायालय का फैसला जिसके अनुसार धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है कि

1. राज्य का कोई धर्म नहीं होगा

2. राज्य सभी धर्मों से दूरी बनाए रखेगा और

3. राज्य किसी धर्म को बढ़ावा नहीं देगा और न ही राज्य की कोई धार्मिक पहचान होगी।

आज जरूरत इस बात की है कि विज्ञान की रक्षा के लिए, वैज्ञानिक चिन्तन को जड़मूल बनाने के लिए साधारण लोग–छात्र, अध्यापक, बुद्धिजीवी–अपने अपने स्तर पर आगे आएं और विज्ञान एवं मिथकशास्त्र के इस घोल को प्रश्नांकित करें।

सकारात्मक बात यह है कि सब कुछ समाप्त नहीं हुआ है।

विज्ञान की रक्षा के लिए अलग-अलग आवाज़ें भी बुलंद होती दिख रही हैं।

मालूम हो कि आई.आई.टी. मुंबई के छात्र कुछ वक्त पहले सुर्खियों में आए जब

छात्रों की अपनी पत्रिका में उन्होंने संस्थान में एक कार्यक्रम में बुलाए गए एक काबिना मंत्री के बयान पर सवाल उठाया। उन्होंने कहा कि क्या आई.आई.टी. प्रबंधन के पास वक्ताओं का अभाव था कि उन्होंने एक मंत्री को बुलाया जिन्होंने तरह-तरह की अवैज्ञानिक बातें कीं।

> "NASA has confirmed that if talking computers were to become a reality, it will only be based on the foundation of Sanskrit. Sanskrit is a scientific language, incomparable to any other. It is the only language where the words are written exactly the way they are spoken."
>
> And
>
> "Who did research on atoms & molecules? The one who researched on atoms and molecules, discovered them, was Charak Rishi"

इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बंगलुरू के छात्रों ने श्री श्री रविशंकर के व्याख्यान का विरोध किया (https://thewire.in/education/iiscstudents-protest-sri-sri-talk-on-campus-for-unscientific-views)

> "We, the undersigned, hereby express our objections to the upcoming lecture by Sri Sri Ravishankar on the grounds of the threat we perceive it poses to the state of mental health on our campus and because of the unscientific claims we found on Sri Sri Ravishankar's webpage."

गौरतलब है कि चुनावों के पहले 200 से अधिक वैज्ञानिकों ने एक खुला ख़त लिख कर लोगों से अपील की थी कि वह कुछ अतिवादी समूहों द्वारा प्रस्तुत की जा रही भेदभाव और हिंसा की राजनीति को खारिज करें।

यूं तो 2014 में मौजूदा हुकूमत के आगमन के बाद लम्बे समय तक वैज्ञानिक समुदाय में चुप्पी देखने को मिली थी, यहां तक कि प्रधानमंत्री द्वारा अम्बानी अस्पताल के उद्घाटन पर दी गयी तकरीर का भी जोरदार प्रतिवाद नहीं हुआ था, अलबत्ता अब चीज़ें बदल रही हैं।

9 अगस्त 2017 को जब देश में 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन की 75 वीं सालगिरह पर बहस जारी थी, उस दिन गोया इतिहास रचा गया। देश के तीस से अधिक शहरों में वैज्ञानिक, विज्ञानप्रेमी और सरोकार रखने वाले लोग हजारों की तादाद में जुटे और उन्होंने अपनी संगठित आवाज़ बुलन्द की, ऐसी आवाज़ जो विज्ञान के पक्ष में थी, ऐसी आवाज़ जो अंधश्रद्धा का विरोध कर रही थी। एक तरह से देखें तो उसी साल 22 अप्रैल को जहां दुनिया के 600 से अधिक शहरों में पृथ्वी दिवस' पर 'जिस तरह हजारों की तादाद में वैज्ञानिक, विज्ञानप्रेमी और सरोकार रखने वाले लोग विज्ञान बचाने की खातिर उतरे थे, जब उन्होंने दुनिया भर में फैल रही नवउदारवादी नीतियों के तहत विज्ञान पर घटते जोर को लेकर आवाज़ बुलन्द की थी, उसी प्रयोग को यहां दोहराया जा रहा था।

उनकी साफ मांग थी कि विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के विकास के लिए सकल घरेलू उत्पाद का कम से तीन फीसदी आवंटित किया जाए और शिक्षा के लिए यही राशि दस फीसदी की जाए; अवैज्ञानिक, अस्पष्ट विचारों और धार्मिक असहिष्णुता का प्रचार रोका जाए और संविधान के अनुच्छेद 51 के अनुपालन में वैज्ञानिक स्वभाव, मानव मूल्यों और जांच की भावना को विकसित किया जाए; यह सुनिश्चित किया जाए कि शिक्षा प्रणाली केवल उन विचारों को प्रदान करे जो वैज्ञानिक प्रमाणों द्वारा समर्थित है; साक्ष्य आधारित विज्ञान के आधार पर नीतियों को लागू किया जाए।

आख़िर ऐसी क्या बात थी कि वैज्ञानिक–जिनके बारे में यह मिथक गढ़ा गया है

कि वह अपने आप को प्रयोगशालाओं तक, सेमिनारों–संगोष्ठियों तक या जनता के बीच विज्ञान पहुंचाने को लेकर सक्रिय रहते हैं – दुनिया में ही नहीं बल्कि देश के अन्दर भी सड़कों पर उतरने के लिए मजबूर हो रहे हैं, इसकी दो साफ वजहें देखी जा सकती हैं। एक विचार जगत में समतामूलक, प्रगतिवादी, समावेशी धारणाओं को प्रतिस्थापित करके विषमतामूलक, पश्चगामी और असमावेशी (नस्लवादी) समुदायवादी धारणाओं को मिलती बढ़त – जिसका प्रतिबिम्बन विभिन्न लोकतंत्रों में हाल में हुए परिवर्तनों, संकीर्णतवादी आन्दोलनों के उभार में देखा जा सकता है; वहीं इसी का दूसरा पहलू जनकल्याण खर्चों में लगातार कटौती कर सब कुछ बाज़ार के हवाले करने की तरफ नीतियों का जोर।

प्रस्तुत मार्च फॉर साइंस की तरफ से देश के नीति-निर्माताओं से यह अपील की गयी कि देश के वैज्ञानिक समुदाय से उनकी ऊंची अपेक्षाओं को तभी ज़मीन पर उतारा जा सकता है जब वह वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए दी जा रही सहायता को बढ़ाने का निर्णय लें। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि जहां भारत में हम सकल घरेलू उत्पाद का महज 0.8 से 0.9 फीसदी खर्च करते आए हैं वहीं तमाम देशों में यह खर्चा 3 फीसदी से भी अधिक है। मिसाल के तौर पर दक्षिणी कोरिया अपने सकल घरेलू उत्पाद का 4.15 फीसदी विज्ञान टेक्नोलॉजिकल अनुसंधान पर खर्च करता है, जापान 3.47 फीसदी, स्वीडन 3.1 फीसदी और डेनमार्क 3.18 फीसदी खर्च करता है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इतना कम फंड दिए जाने के बाद भी उसका बंटवारा भी विषम हो रहा है। डिपार्टमेण्ट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी को उसका महज 7.5 फीसदी मिलता है तो सेन्टर फॉर साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च को 7 फीसदी मिलता है।

लेकिन क्या इतना ही काफी है या कुछ और नया गुनने बुनने की जरूरत है।

यह एक साधारण व्यक्ति भी बता सकता है कि अभी बहुत कुछ अधिक, अधिक सृजनात्मक तरीके से, अधिक ऊर्जा के साथ करने की जरूरत है।

नए प्रश्नों से रूबरू होने के लिए तैयार होना है।

–हमें यह भी सोचना है कि लोक विज्ञान आन्दोलन–जो समूची दुनिया में एक अनोखे हस्तक्षेप के तौर पर सामने आया – जिसके बीज 60 के दशक में पड़े और सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध या अस्सी के दशक के पूर्वार्द्ध में उसने साइंस फॉर सोशल रेवोल्यूशन का नारा बुलन्द किया, जिसने विज्ञान प्रचार, वैज्ञानिक नीतियों में हस्तक्षेप, वैकल्पिक विकास की अवधारणा या साक्षरता अभियान तथा कई अभियानों से जनता से जुड़ने का काम किया, वह जितना असर छोड़ना चाहिए वह क्यों नहीं छोड़ पाया।

मैं जानता हूं कि आन्दोलन के भीतर इसके बारे में समीक्षा अवश्य हुई होगी तथा सार्थक नतीजे निकाले गए होंगे। अलबत्ता इस आन्दोलन के एक दर्शक के तौर पर मुझे अक्सर विज्ञान आन्दोलन की व्यापक सरगर्मियों तथा प्रगतिशील विचारधारा के तहत साहित्य एवं संस्कृति के इलाके में चले आन्दोलन की हालात की तुलना मददगार होगी ऐसा लगता है।

मुझे याद है कि वाम धारा के तहत चले इन आन्दोलनों की समीक्षा करते हुए प्रोफेसर के एन पणिक्कर ने एक दिलचस्प बात कही थी इण्टरवेन्शन इन कल्चर या कल्चरल इनटरवेंशन अर्थात् संस्कृति में हस्तक्षेप या सांस्कृतिक हस्तक्षेप। किसी को यह शब्दों का हेरफेर लग सकता है, लेकिन संस्कृति में हस्तक्षेप अधिक बुनियादी है जो मानस को बदलने से ताल्लुक रखता है। अपने सांस्कृतिक मोर्चे के जरिए जहां वाम ताकतों ने साहित्य, कला आदि क्षेत्रों में नए-नए मुकाम हासिल किए, मगर वह लम्बा असर नहीं छोड़ पाए जबकि दक्षिणपंथी ताकतें–जो काफी कमजोर हालत में थी आज़ादी के वक्त–उन्होंने समाज के मानस को किस तरह रफ़्ता-रफ़्ता बदला जाए इसके लिए अलग तरह का हस्तक्षेप किया, यह समझने की बात है।

–एक सवाल समाज में विज्ञान विरोध के आधार को या उसे मजबूती दिलाने वाले कारकों से जुड़ा भी है।

पूंजीवादी व्यवस्था के तर्क को बखूबी देखा जाता है

मगर सामाजिक/सांस्कृतिक पक्षों को–धर्म, जाति, सम्प्रदाय या समुदाय के व्यक्ति पर वर्चस्व आदि बातों को लेकर हमारी समझदारी क्या है और उसे लेकर हमारा कार्यक्रम क्या है?

क्या कहीं का विज्ञान आन्दोलन धर्म की चिकित्सा या धर्म का निषेध किए बगैर आगे बढ़ सकता है?

–हमारे मुल्क में 19 वीं सदी से मौजूद सामाजिक विद्रोहियों की धारा ने–फुले, पेरियार, अम्बेडकर आदि ने–एक तरह से भारत में धर्म की प्रबोधन मार्का आलोचना (enlightenment style critique) करने की कोशिश की (देखें, 35, मीरा नन्दा, ब्रेकिंग द स्पेल ऑफ धर्म) अम्बेडकर ने अक्सर फ्रांसीसी इन्कलाब के नारों – स्वतंत्रता, समता और बंधुता – का प्रयोग भारत के जनतांत्रिक आन्दोलन के सन्दर्भ में किया। पुराने मूल्यों के सतत संशोधन और उनके रैडिकल बदलाव के नए पैमाने के तौर पर वैज्ञानिक चिन्तन की बात अम्बेडकर ने की। 'गैलीलिओ, न्यूटन और डार्विन की पद्धतियों और सत्य का समृद्ध करने वाले मूल्यों के प्रति वरीयता देने का अम्बेडकर का आग्रह' उनके हिसाब से 'बुद्ध और अवैदिक भौतिकवादियों और संदेहवादियों की शिक्षा के अनुरूप था।' पारम्पारिक हिन्द ज्ञानमीमांसा जो आधिभौतिक इकाईयों एवं ताकतों के सन्दर्भ में चीजों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करती है, जिन कारकों को मानवीय बोध और तर्क से प्रमाणित नहीं किया जा सकता, इस पद्धति में एक कदम आगे के तौर पर सामाजिक विद्रोही धारा ने आधुनिक विज्ञान को समझा था।

प्रश्न है भारत में विज्ञान आन्दोलन के प्रोग्राम में क्या इस पहलू को समाहित किया जा सका है या नहीं ?

–एक मसला, जिससे हमें बार-बार टकराना पड़ता है, वह है प्राचीन भारत में खगोलशास्त्र, चिकित्साशास्त्र में हुई प्रगति का तथा उसके पतन को लेकर हिन्दुत्ववादी ताकतों की एक किस्म की पुनरूत्थानवादी व्याख्या का। मिसाल के तौर पर दक्षिणपंथी ताकतें प्राचीन भारत में विज्ञान की जबरदस्त तरक्की का

हवाला देती हैं और उसके पतन के लिए बाहरी आक्रमण को जिम्मेदार ठहराती है। (देखें, 'चार्वाक के वारिस, ऑथर्स प्राइड, विस्तृत चर्चा के लिए) अगर हम उसे बाह्य ताकतों पर डालेंगे तो उससे सही नतीजे कभी नहीं निकल सकते हैं।

अभी हम जब यहां बैठे हैं तो ख़बर आयी है कि ब्राजील में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार की जिसका फोकस होगा यह पड़ताल करना पृथ्वी गोल है या चपटी? आप पूछेंगे कि यह कैसा वाहियात सवाल है, पांच सौ साल पहले ही कोपर्निकस ने उसे हल किया है। गौरतलब है कि ब्राजील के जिन लोगों ने इस सेमिनार के लिए पहल ली है, वह अकेले नहीं हैं। पश्चिम के कई मुल्कों में इस 'सिद्धांत' के हिमायती आज मिल जाएंगे। एक तरफ जहां खगोलविज्ञान की इस बेसिक जानकारी को लेकर लोग भ्रमित हैं, वहीं साथ ही साथ जीवन कैसे निर्मित हुआ उसे लेकर भी बहस जोरों पर है। डार्विन के विकास के सिद्धांत के बरअक्स इंटेलिजेन्ट डिजाइन का सिद्धांत पेश किया गया है, जो अमेरिका के कई राज्यों में पढ़ाया भी जाता है।

एक दिलचस्प बात यह भी है कि ऐसे लोगों तथा दक्षिणपंथी जमातों में आपस में काफी घनिष्ठ रिश्ता दिखता है। एक अपवित्र गठबंधन सा उभरा है कॉर्पोरेट ताकतों, दक्षिणपंथी जमातों एवं ऐसे लोगों के बीच।

कहने का तात्पर्य कि अगर हमारे यहां ही अहमकों की पौध अचानक उग आयी दिखती है, तो परेशान होने की आवश्यकता नहीं। अहमक दुनिया भर में फल फूल रहे हैं।

और एक सकारात्मक बात है कि इन अहमकों का मुंहतोड़ जवाब देने के लिए भी लोग, आन्दोलन, राजनीतिक पार्टियां गोलबन्द हो रही हैं।

रायपुर का यह सम्मेलन इसी बात की गवाही देता है।

इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी
फ्लैट नंबर-110, नम्बरदार हाउस,
62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067
टेलीफोन - 011-26177904 टेलीफैक्स - 011-26177904
ईमेल - prakashan.isd@gmail.com
वेबसाइट - isd.net.in

केवल सीमित वितरण के लिए